के. माधवा रेड्डी और अन्य

बनाम

आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य

(सिविल अपील संख्या 4947-4951/2014)

अप्रैल 29, 2014

[टी एस ठाकुर और सी. नगापन जे जे]

सेवा कानून-पदोन्नति-सुप्रीम कोर्ट के वी. जगन्नाध राव के मामले में पारित फैसला दिनांक 7 नवंबर 2001 के दृश्य में स्थानांतरण द्वारा पदोन्नति की अनुमति देने वाले जीओएम को राज्य प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा रद्द कर दिया गया-ट्रिब्यूनल का निर्देश जीओएम रद्दीकरण केवल संभावित होगा और तारीख 7 नवंबर, 2001 तक नियमों के अनुपालन में की कोई कार्रवाई अप्रभावित रहेगी-उच्च न्यायालय ने ट्रिब्यूनल का आदेश वी जगन्नाध राव का फैसला संभावित होने के हद तक रद्द कर दिया और परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं-कर्मचारियों को प्रत्यावर्तन की संभावनाओं का सामना करना पड़ा-संभावित अधिनिर्णय का सिद्धांत-प्रासंगिकता-माना गया:तथ्यों पर, लागू नहीं- पदोन्नति का आदेश राज्य द्वारा दिया गया था और अपीलकर्ताओं द्वारा छीना नहीं गया- जिस तारीख को पदोन्नति की गई उसमें कोई जोखिम का

तत्व नहीं था न ही जोखिम था और न ही पदोन्नति निर्धारण के अधीन थी पदधारियों की पात्रता के संबंध में किसी कानूनी विवाद का ऐसे प्रमोशन के लिए-कानून कानूनी होने तक उतार-चढ़ाव की स्थिति में था अंततः वी. जगन्नाध राव के मामले में स्थिति तय हो गई-मामले की परिस्थितियों में, भले ही उच्च न्यायालय के संभावित अधिनिर्णय सिद्धांत को लागू करने में सक्षम नहीं था, सर्वोच्च न्यायालय को कुछ भी नहीं रोकता इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ऐसा करने से कि उन लोगों को पदोन्नत किया गया आक्षेपित नियमों के तहत ने अपने संबंधित पदों पर कब्जा कर लिया था काफ़ी लम्बे समय तक उनका प्रत्यावर्तन किया गया मूल क्षेत्र/कैडर न केवल प्रशासनिक रूप से कठिन है बल्कि अनुचित रूप से कठोर और अनुचित और बाध्य है व्यापक प्रभाव, यहां तक कि उन लोगों के प्रति भी पूर्वाग्रह, जो पहले पक्षकार नहीं थे न्यायालय-विवादित जीओएम को उचित रूप से अधिकारातीत घोषित किया गया था राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा राष्ट्रपति का आदेश, लेकिन कहा कि घोषणा से 7 नवंबर, 2001 वह तारीख जब वी. जगन्नाध राव के मामले का सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फैसला किया गया था से पहले जीओएम के आधार पर की पदौन्नती और नियुक्ति प्रभावित नहीं होंगी-भारत का संविधान, 1950-अनुछेद 309 का परन्तुक।

सिद्धांत-संभावित अधिनिर्णय का सिद्धांत-उत्पत्ति और की प्रयोज्यता-पर चर्चा की गई।

जी.ओ.एम. क्रमांक 14, श्रम रोजगार एवं सी ·प्रशिक्षण (सेर. IV) विभाग, दिनांक 26 नवंबर, 1994, जिसे की जी;ओ.एम. क्रमांक 22 दिनांक 9 मई 1996 द्वारा संशोधित है किया गया उससे व्यथित कुछ कर्मचारियों ने आंध्र प्रदेश प्रशासनिक प्राधिकरण के समक्ष याचिका दायर की थी-सुप्रीम कोर्ट द्वारा वी. जगंनाधा राव के मामले में पारित निर्णय दिनांक 7 नवंबर 2001 (जिसके जरिये क़ानून की स्थिति स्थापित की गई थी) को आधार मान कर प्राधिकरण द्वारा आक्षेपित जी;ओ.एम. s को इस हद तक असंवैधानिक करार कर खारिज कर दिया हैं जिसके जरिये आंध्र प्रदेश मंत्रिस्तरीय सेवा के प्रधान कार्यालयों में तथा कारखानों और बोइलेर्स विभाग में कार्यरत वरिष्ठ सहायक और वरिष्ठ आशु लिपिक को स्थानांतरण द्वारा सहायक श्रम अधिकारी के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र माना गया था ।

यद्यपि, प्राधिकरण ने आगे निर्देश दिया कि विवादित जी.ओ.एम. को ख़त्म करने का आदेश भविष्यलक्षी प्रभाव रखेगा तथा उक्त जी.ओ.एम. की अनुपालना में दिनांक 7 नवंबर, 2001 तक की गई कोई भी कार्रवाई आदेश से प्रभावित नहीं होगी तथा इस न्यायालय के वी जगंनाधा राव के निर्णय

से पहले चलित कानूनी स्थिति के चलते किसी कर्मचारी को कानूनी आधार पर दी गई पदोन्नति यथावत रहेगी।

प्राधिकरण के आदेश के विरुध् रिट याचिका दायर कर याचिकाकर्ता द्वारा विवादित जी.ओ.एम. के आधार पर पहले से ही की गई पदोन्नतियों को पृथक किया जाने को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने यह माना है की कोई आदेश भविष्यलक्षी प्रभाव रखने बाबत सिद्धांत को केवल शीर्ष न्यायालय द्वारा ही लागू किया जा सकता है, उच्च न्यायालयों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग कर ऐसा नहीं किया जा सकता है; अतः प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश को इस हद तक अपास्त किया गया जिसमें प्राधिकरण ने यह माना था की वी जगंनाधा राव में पारित उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय भविष्यलक्षी प्रभाव रखता है।

अपीलकर्ता-कर्मचारियों को उच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिका में पक्षकार नहीं बनाया गया था जबकि वे नियमों को रद्द करने से प्रभावित हुए थे और उनके समक्ष प्रत्यावर्तन की सम्भावना थी इसलिए वे व्यथित थे इसलिए उनके द्वारा समीक्षा याचिकाएँ दायर की गईं जिन्हें खारिज कर दिया गया। उसके विरुद्व यह अपील पेश की गई।

न्यायालय ने अपील निस्तारित करते हुए अभिनिर्धारित किया :

1.1 संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत की उत्पत्ति अमेरिकी न्यायशास्त्र में हुई थी। इसका प्रयोग इस देश में सबसे पहले सी. गोलक नाथ एवं

अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य के मामले में एआईआर 1967 एससी 1643 किया गया था और न्यायालय इस तथ्य के प्रति सचेत था कि सिद्धांत की उत्पत्ति किसी अन्य देश में हुई थी और इसे विभिन्न परिस्थितियों में लागू किया गया था। न्यायालय ने भारतीय परिस्थितियों में सिद्धांत के अनुप्रयोग में सावधानी बरतने का हवाला दिया। यह सिद्धांत उसी मुद्दे पर पहले के न्यायिक निर्णय को रद्द करने तक ही सीमित नहीं रहा है जैसा कि गोलक नाथ के मामले में समझा गया था। बाद के कई निर्णयों में, इस न्यायालय ने विभिन्न स्थितियों में इस सिद्धांत को लागू किया है, जिसमें वे मामले भी शामिल हैं जहां किसी मुद्दे की पहली बार जांच और निर्धारण किया गया है। इस न्यायालय ने माना कि न्याय के हित को ध्यान में रखते हुए उसके समक्ष स्थिति के लिए सबसे उपयुक्त तरीके से राहत देने, ढालने या प्रतिबंधित करने का अधिकार न्यायालय के पास है। (पद संख्या 8,9)

1.2 इस न्यायालय द्वारा 'संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत' को व्यावहारिकता और न्यायिक कौशल के रूप में देखा गया, जो पूर्व घोषित कानून के बदलने पर नए कानून की घोषणा पर लोगों के अधिकारों को अनावश्यक रूप से प्रभावित किए बिना कानून के संचालन में सुचारू परिवर्तन लाने के लिए एक उपयोगी उपकरण है । (पद संख्या 14)

आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम वी. सदानंदम और अन्य 1989 सप्प. (1) एससीसी 574; आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम बी. सत्यनारायण राव (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधियों के जरिये और अन्य (2000) 4 एससीसी 262- इन न्यायिक दृष्टान्तो की रद्द किया गया।

सी. गोलक नाथ एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य के मामले में एआईआर 1967 एससी 1643; इंडिया सीमेंट लिमिटेड और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (1990) 1 एससीसी 12; उड़ीसा सीमेंट लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य 1991 सप्ल. (1) एससीसी 430; भारत संघ एवं अन्य बनाम मो. रमज़ान खान (1991) 1 एससीसी 588; अशोक कुमार गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (1997) 5 एससीसी 201; केशवानंद भारती श्रीपदगलवरु और अन्य बनाम केरल राज्य ; मेसर्स सोमैया ऑर्गेनिक्स (इंडिया) लिमिटेड आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2001 (5) एससीसी 519 तथा प्रबंधन निदेशक, ईसीआईएल हैदराबाद बनाम बी. करुणाकर (1993) 4 एससीसी 727- इन न्यायिक दृष्टान्तो का प्रसंग दिया गया।

2.1 इस प्रकरण में न्यायालय के लिए इस प्रश्न पर विचार करना अनावश्यक था कि क्या संभावित अधिनिर्णय का सिद्धांत उच्च न्यायालय को उपलब्ध है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भले ही उच्च न्यायालय सिद्धांत को लागू करने के लिए सक्षम नहीं है, फिर भी इस तथ्य

को ध्यान में रखते हुए की इस न्यायालय को ऐसा करने से कोई नहीं रोक सकता है क्यूंकि लागू नियमों के तहत पदोन्नत किए गए लोगों ने अपने संबंधित पदों पर कार्य किया है और उन्हें अपने मूल क्षेत्र/कैडर में वापसी न केवल प्रशासनिक रूप से कठिन है, बल्कि अनुचित रूप से कठोर और अनुचित भी है । (पद संख्या 17)

2.2 जगन्नाध राव के मामले में आदेश की घोषणा से पहले यानी 7 नवंबर, 2001 से पहले की गई पदोन्नति, समीक्षा याचिका खारिज कर दिए जाने से पूर्व लगभग दस वर्षों तक जारी रही है और मामला इस न्यायालय के समक्ष लाया गया। उस पृष्ठभूमि में हमने प्रतिवादी-राज्य के विद्वान वकील से यह निर्देश लेने के लिए कहा था कि क्या राज्य सरकार याचिकाकर्ताओं को समायोजित करने और उनके प्रत्यावर्तन को रोकने के लिए अतिरिक्त पद सृजित करने के लिए तैयार है। हालाँकि, आंध्र प्रदेश सरकार के श्रम आयुक्त द्वारा दायर एक अतिरिक्त हलफनामा इस बात का समर्थन नहीं करता है कि आक्षेपित निर्णय से उत्पन्न गतिरोध का समाधान क्या हो सकता है। हलफनामे में कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं को उनके मूल पदों यानी वरिष्ठ सहायकों और वरिष्ठ आशुलिपिकों को समायोजित करने के लिए अतिरिक्त पद बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए, हमारे पास उन तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें प्रश्न उठता है, मामले के गुण-दोष के आधार पर संभावित

अधिनिर्णय के सिद्धांत को लागू करने के प्रश्न की जांच करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। ऐसा करते समय हमें सबसे पहले यह बताना होगा कि उत्तरदाताओं का यह कहना सही नहीं है कि याचिकाकर्ताओं ने अपने कैडर के बाहर पदोन्नति का विकल्प चुनकर कोई जानबूझकर या गणना की गई जोखिम ली है। उत्तरदाताओं ने यह दावा करते समय इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि पदोन्नति का आदेश राज्य द्वारा दिया गया था और याचिकाकर्ताओं द्वारा नहीं छीना गया था। जिस तारीख को पदोन्नति की गई थी उसके अलावा जोखिम का कोई तत्व नहीं था और न ही पदोन्नति ऐसी पदोन्नति के लिए पदधारियों की पात्रता के संबंध में किसी कानूनी विवाद के निर्धारण के अधीन थी। इतना ही नहीं, जिन पदाधिकारियों को सहायक श्रम अधिकारी के रूप में पदोन्नति पर भेजा गया था, उन्हें बाद में सहायक श्रम आयुक्त या उप श्रम आयुक्त के रूप में पदोन्नत किया गया था। इस सुदूर समय में इन अधिकारियों को उनके मूल संवर्ग में वरिष्ठ आशुलिपिकों के पदों पर वापस भेजने की स्थिति हमें या तो न्यायसंगत, निष्पक्ष या न्यायसंगत प्रतीत नहीं होती है, खासकर तब जब राज्य उन्हें पदौन्नत करने का प्रस्ताव नहीं करता है। उनके ज़ोन/कैडर के भीतर उच्च पद क्योंकि ऐसे उच्च पदों पर अन्य अधिकारियों का कब्जा है, जिनमें से अधिकांश यदि नहीं तो सभी याचिकाकर्ताओं से कनिष्ठ हैं और जिन्हें उन उच्च पदों पर याचिकाकर्ताओं

के लिए जगह बनाने के लिए वापस भेजा जा सकता है। इसलिए याचिकाकर्ताओं को उनके मूल कैडर में वापस भेजने का व्यापक प्रभाव पड़ना तय है, जिससे उन लोगों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जो हमारे सामने पक्षकार नहीं हैं। [पद संख्या 18]

2.3 यह तथ्य कि याचिकाकर्ताओं को ट्रिब्यूनल या उच्च न्यायालय के समक्ष पक्षकार के रूप में सूचीबद्ध नहीं किया गया था, वर्तमान मामले की तथ्य स्थिति को कैलाश चंद के मामले के करीब लाता है। वर्तमान मामले में कानून, कैलाश चंद के मामले की तरह, अस्थिर स्थिति में था। ऐसी स्थिति होने पर, हमें कोई कारण नहीं दिखता कि तत्काल मामले में संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है। सिर्फ इसलिए कि, इस न्यायालय ने जगन्नाध राव के मामले में उस प्रश्न को संबोधित नहीं किया था, हमारे लिए वर्तमान मामले में ऐसा करने से इनकार करने का कोई कारण नहीं है। इसके अलावा, जगन्नाध राव का मामला मानदंडों के एक अलग सेट से निपट रहा था जिसमें पहले उल्लिखित जीओएम नंबर 14 और 22 शामिल थे। हालांकि मूल प्रश्न यह है कि क्या ऐसे जीओएम एक विभाग से कैडर या ज़ोन से दूसरे विभाग में स्थानांतरण द्वारा पदोन्नति की अनुमति देते हैं, यह वही हो सकता है, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि जिन नियमों के साथ यह न्यायालय जगन्नाध राव के मामले में चिंतित था, वे नियमों से

भिन्न थे जिनके साथ हम वर्तमान मामले में निपट रहे हैं। हमें लगता है कि संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत के आवेदन के सवाल पर, जगन्नाध राव के मामले में निर्णय इस न्यायालय के लिए बाधा नहीं बनेगा। [पद संख्या 18]

वी. जगन्नाध राव और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य (2001) 10 एससीसी 401- इस न्यायिक दृष्टान्त की व्याख्या की गई।

कैलाश चंद शर्मा बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2002) 6 एससीसी 562- इस न्यायिक दृष्टान्त को लागू माना गया।

3. परिणामस्वरूप, हम इन अपीलों को स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को रद्द करते हैं और मानते हैं कि जीओएम नंबर 14 और 22 को राज्य प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा राष्ट्रपति आदेश के दायरे से बाहर सही रूप से घोषित किया गया है, परन्तु यह घोषणा 7 नवंबर, 2001, वह तारीख जब इस न्यायालय द्वारा जगन्नाध राव का फैसला किया गया था, से पहले उक्त जीओएम के आधार पर की गई पदोन्नति और नियुक्तियों को प्रभावित नहीं करेगी । [पद संख्या 19]

संदर्भित न्यायिक दृष्टान्त:

(2001) 10 एससीसी 401 व्याख्या की गई पद संख्या 2

1989 एसयुपीपी (1) एससीसी 574 रद्द किया गया पद संख्या 4

(2000) 4 एससीसी 262 रद्द किया गया पद संख्या 4

ऐआईआर 1967 एससी 1643 प्रसंग दिया गया पद संख्या 8

(1990) 1 एससीसी 12 प्रसंग दिया गया पद संख्या 9

1991 एसयुपीपी (1) एससीसी 430 प्रसंग दिया गया पद संख्या 9

(1991) 1 एससीसी 588 प्रसंग दिया गया पद संख्या 10

(1997) 5 एससीसी 201 प्रसंग दिया गया पद संख्या 11

(1973) 4 एससीसी 225 प्रसंग दिया गया पद संख्या 11

(1973) 4 एससीसी 519 प्रसंग दिया गया पद संख्या 13

(2002) 6 एससीसी 562 लागू माना गया पद संख्या 15

(1993) 4 एससीसी 727 प्रसंग दिया गया पद संख्या 15

सिविल अपील क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 4947-4951/ 2014

आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की हेदराबाद पीठ द्वारा डब्ल्यू. पी. संख्या 6068/2004, डब्ल्यू. पी. सं. 6123/2004, डब्ल्यू. पी. सं. 16890/2006 में पारित निर्णय तथा आदेश दिनांक 09.03.2007 तथा डब्ल्यू. पी. सं. 6068/ 2004, डब्ल्यू. पी. एम. पी. सं. 8971/2004, आर. डब्ल्यू. पी.एम. पी सं. 35762/2010 में पारित निर्णय तथा आदेश दिनांक 03.11.2010 के विरुद्ध

जयंत भूषण, आर. बसंत, जी. रामकृष्ण प्रसाद, मोहम्मद वसी खान, बी. सुयोधन, भरत जे. जोशी, फिल्जा मोनिस अपीलार्थियों की ओर से ।

जयदीप गुप्ता, डी. महेश बाबू, सुचित्रा हरंगखवाल, अमजिद मकबूल, अमित के. नैन, बी. रामकृष्ण राव, आदित्य जैन, सुनीता चौधरी, एम. श्रीनिवास राव, जे. गोवर्धन, सुधा गुप्ता, जी. एन. रेड्डी, वी. वी. जे. राव, विजया भास्कर, चंदन मिश्रा, तातिनी बसु उत्तरदाताओं की ओर से।

इस न्यायालय का यह निर्णय

टीएस ठाकुर, जे.

द्वारा लिखाया गया।

1.अपील की अनुमति दी गई।

2. ये अपीलें आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय हैदराबाद द्वारा पारित 9 मार्च, 2007 के एक आदेश के खिलाफ प्रस्तुत हुई थी, जिसके तहत उच्च न्यायालय द्वारा राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा ओए नंबर 6334/ 1997 में पारित आदेश को रद्द किया गया था और जिसमें इस न्यायालय द्वारा वी. जगन्नाध राव और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य (2001) 10 एससीसी 401 के मामले में पारित निर्णय को भविष्यलक्षी प्रभाव रखने वाला माना गया था । उक्त आदेश के खिलाफ अपीलकर्ताओं द्वारा दायर समीक्षा याचिका को खारिज करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा 3

नवंबर, 2010 को पारित आदेश की भी आलोचना की गई है। प्रकरण की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि निम्न अनुसार है:

3. वी. जगन्नाध राव और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य (2001) 10 एससीसी 401 के मामले में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष यह प्रश्न था की क्या आंध्र प्रदेश के राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक के तहत बनाये गए विशेष नियम जो की वरिष्ठता-सह-दक्षता के आधार पर उच्च श्रेणी में "स्थानांतरण द्वारा नियुक्ति" को अनुमति देता हैं वह भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 371-डी के तहत जारी राष्ट्रपति आदेश के पद 5 (2) के उल्लंघन में है अथवा नहीं । इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए इस न्यायालय ने माना कि संविधान के अनुच्छेद 371-डी के तहत जारी राष्ट्रपति का आदेश दिनांक 18 अक्टूबर, 1975 था का उद्देश्य सार्वजनिक रोजगार, शिक्षा आदि के मामले में राज्य के विभिन्न हिस्सों के लोगों को समान अवसर और सुविधाएं प्रदान करना था और राज्य सरकार द्वारा उक्त अनुच्छेद 309 के परंतुक के तहत बनाए गए नियम जिसके तहत श्रम विभाग और कारखानों और बॉयलर विभाग के यूडीसी को सहायक श्रम निरीक्षक/कारखानों के सहायक निरीक्षक के पदों पर स्थानांतरण द्वारा भर्ती के लिए पात्र बनाया गया था, वे नियम राष्ट्रपति आदेश के उल्लंघन में थे। यह प्रश्न श्रम विभाग के मंत्रिस्तरीय कर्मचारियों द्वारा जीओएम नंबर 72 दिनांक 25 फरवरी, 1986 और

जीओएम नंबर 117 दिनांक 28 मई, 1986 के खिलाफ दी गई चुनौती के कारण उठा था, जिसके तहत श्रम विभाग में कार्यरत यूडीसी और कारखानों तथा बॉयलर विभाग में कार्यरत लोगो को सहायक श्रम निरीक्षक और सहायक कारखाना निरीक्षक के पदों पर स्थानांतरण कर भर्ती के लिए पात्र बनाया गया। ट्रिब्यूनल की एक पूर्ण पीठ, जिसके समक्ष उक्त बिंदु विचारण हेतु आया था, उसने यह घोषणा की कि जिस हद तक उक्त नियम फ़ैक्टरी और बॉयलर विभाग या किसी अन्य विभाग के मंत्रालयिक कर्मचारियों को श्रम विभाग में पदों पर नियुक्ति के लिए सक्षम बनाते हैं, वे नियम राष्ट्रपति आदेश के पैरा 3 और 5 के उल्लंघनकारी थे और इसलिए शून्य माने जाने योग्य थे। पीड़ित कर्मचारियों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष ट्रिब्यूनल द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को चुनौती दी गई थी। अपीलों को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने माना कि राष्ट्रपति आदेश की योजना के अनुसार, भर्ती, नियुक्ति, वरिष्ठता, पदोन्नति और स्थानांतरण के लिए स्थानीय कैडर उसके पैरा 5(1) के तहत इकाई थी। इस न्यायालय ने आगे कहा कि जबकि पैरा 5(2) राज्य सरकार को कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियों में 'स्थानांतरण' के लिए प्रावधान करने के लिए अधिकृत करता है, फिर भी 'स्थानांतरण' शब्द को इसके आयाम में विस्तारित कर इस इसमें पदानौती संबंधी पहलुओं को शामिल नहीं किया जा सकता है । इस न्यायालय ने कहा:

"18. हमने पाया कि राष्ट्रपति आदेश का पैरा 5(2) स्थानांतरण की बात करता है न कि पदोन्नति की। अपीलकर्ताओं के इस तर्क को स्वीकार करना खतरनाक होगा कि पदोन्नति "स्थानांतरण" अभिव्यक्ति में शामिल है और आदेश के पैरा 5(1) में किए गए भेद से कोई सहायता नहीं ली जा सकती है। किसी क़ानून के किसी भी प्रावधान या शब्द को अलग से नहीं पढ़ा जाना चाहिए। वास्तव में, क़ानून को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए। क़ानून विधायिका का एक अध्यादेश है। यह नहीं कहा जा सकता कि बिना किसी उद्देश्य के स्थानांतरण और पदोन्नति के बीच पैरा 5(1) में अंतर किया गया था और पैरा 5(2) में इस तरह के अंतर को लागू करने का इरादा नहीं था। विधायिका का आशय मुख्य रूप से इस्तेमाल की गई भाषा से पता चलता है, जिसका अर्थ है कि क्या कहा गया है और क्या नहीं कहा गया है उस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। (मोहम्मद अली खान बनाम सीडब्ल्यूटी (1997) 3 एससीसी 5111 और इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया बनाम प्राइस वॉटरहाउस (1997) 6 एससीसी 312 देखें ।)

19. इसलिए, हमें अपीलकर्ता के इस तर्क को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं मिलता है कि "स्थानांतरण" के दायरे में पदोन्नति भी शामिल करती हो।

4. आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम वी. सदानंदम और अन्य 1989 सप्प. (1) एससीसी 574 तथा आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम बी. सत्यनारायण राव (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधियों के जरिये और अन्य.(2000) 4 एससीसी 262 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों को रद्द करते हुए, इस न्यायालय ने माना कि संविधान के अनुच्छेद 371-डी (10) के तहत राष्ट्रपति द्वारा दिया गया कोई भी आदेश संविधान के किसी भी अन्य प्रावधान या किसी भी समय के कानून में किसी भी चीज के बावजूद प्रभावी होगा। इसका तात्पर्य यह है कि यदि राष्ट्रपति का आदेश अन्य इकाइयों के फीडर श्रेणी के कर्मचारियों पर विचार करने पर रोक लगाता है तो संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल द्वारा बनाया गया कोई भी नियम कानून की दृष्टि से बुरा होगा, इसलिए ऐसा आदेश खारिज किए जाने योग्य होगा। इसलिए, यदि राज्य सरकार कोई ऐसा प्रावधान करती है जो राष्ट्रपति आदेश के पैरा 5(2) के तहत सरकार के अधिकार के दायरे से बाहर है, तो ऐसा कोई भी प्रावधान कानूनी रूप से बुरा होगा और रद्द किये जाने योग्य होगा। इसी तर्क पर इस न्यायालय ने कहा:

"वर्तमान मामले में, "ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि विवादित प्रावधान राष्ट्रपति आदेश के पैरा 5(2) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए तैयार किए गए हैं और क्यूंकि यह संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधानों के तहत बनाया गया एक नियम है, इस कारण संविधान के अनुच्छेद 371-डी(10) के तहत राष्ट्रपति का आदेश मान्य होगा । भले ही इसे राष्ट्रपति के आदेश के पैरा 5(2) के तहत दिया गया आदेश माना जाए, तब भी यह उक्त पैराग्राफ के तहत प्रदान की गई अनुमेय सीमा से परे होने के कारण अमान्य होगा। इस दृष्टिकोण से, प्राधिकरण का यह मानना की उक्त प्रावधान कारखानों और बॉयलर इकाइयों के कर्मचारियों को श्रम इकाई में उच्च पद पर पदोन्नति हेतु विचारण किया जा सकता है के हद तक अमान्य माने जाने योग्य है, यह सही है और इस कारण हमारे मत में प्राधिकरण के उक्त निष्कर्ष में हमारे हस्तक्षेप का कोई औचित्य नहीं है और अवश्य ही यह माने जाने योग्य है की इस न्यायालय द्वारा पूर्व में सदानंदम के मामले 1989 (एसयुपीपी) एससीसी 574 में सही निर्णय नहीं लिया गया है और यही

सत्यनारायण राव मामले (2000) 4 एससीसी 262 पर भी लागु होगा।"

5. वर्तमान विवाद जीओएम संख्या 72 दिनांक 25 फरवरी, 1986 और जीओएम संख्या 117 दिनांक 28 मई, 1986 से संबंधित नहीं है, जो वी. जगन्नाध राव के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन थे। मौजूदा मामला थोड़ा अलग, हालांकि मूलतः समान परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ है। हस्तगत मामले जीओएम नंबर 14, श्रम रोजगार और प्रशिक्षण (सिर।V) विभाग, दिनांक 26 नवंबर, 1994 से संबंधित है जो की जीओएम नंबर 22 दिनांक 9 मई, 1996 द्वारा संशोधित किया गया था। ये दो जीओएम यह वर्णित करते हैं की श्रम विभाग के अधीनस्थ कार्यालयों में काम करने वाले वरिष्ठ सहायक और वरिष्ठ आशुलिपिक, आंध्र प्रदेश श्रम अधीनस्थ सेवा नियमों के नियम 3 के तहत फीडिंग चैनल के अंतर्गत आते हैं, प्रधान कार्यालयों में काम करने वाले वरिष्ठ सहायक और वरिष्ठ आशुलिपिक भी स्थानांतरण द्वारा सहायक श्रम अधिकारी के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र होंगे। जीओएम से व्यथित. कुछ कर्मचारियों ने निवारण के लिए आंध्र प्रदेश प्रशासनिक न्यायाधिकरण में याचिका प्रस्तुत की। उनकी व्यथा मुख्य रूप से यह थी कि चूंकि सहायक श्रम अधिकारी का पद एक क्षेत्रीय पद है, इसलिए संबंधित क्षेत्रों में काम करने वाले कर्मचारी ही फीडिंग चैनल में शामिल होने के हकदार हैं।

स्थानांतरण द्वारा पदोन्नति या नियुक्ति के प्रयोजनों के लिए क्षेत्र के बाहर से अन्य श्रेणियों को फीडिंग चैनल में शामिल करना कर्मचारियों के लिए आंध्र प्रदेश सार्वजनिक रोजगार (स्थानीय कार्डों का संगठन और सीधी भर्ती का विनियमन) आदेश, 1975 जिसे की ऊपर राष्ट्रपति के आदेश के रूप में संदर्भित किया गया है के पैरा 3(3) और 5(1) के तहत अनुचित था। इन याचिकाओं को ट्रिब्यूनल ने अपने आदेश दिनांक 7 मार्च, 2003 के तहत आंशिक रूप से स्वीकार किया और जीओएम नंबर 14, दिनांक 26 नवंबर, 1994 जिसे की जीओएम नंबर 22 दिनांक 9 मई, 1996 द्वारा संशोधित किया गया था, उन्हें आंध्र प्रदेश मंत्रिस्तरीय सेवा में वरिष्ठ सहायक और वरिष्ठ आशुलिपिक के लिए श्रम विभाग के मुख्य कार्यालयों और कारखानों और बॉयलर विभागों के अलावा उक्त विभागों में अधीनस्थ कार्यालयों में काम करने वालों के लिए सहायक श्रम के पद पर नियुक्ति के लिए एक चैनल प्रदान करना असंवैधानिक करार दिया । प्राधिकरण ने विवादित जीओएम के उन संबंधित प्रावधानों को रद्द भी कर दिया जिनमें इन श्रेणियों के लिए भाग नियत करने और रोटेशन आदि निर्धारित किया था और यह माना था की ऐसा प्रावधान राष्ट्रपति आदेश का उल्लंघन है और निर्देश दिया कि उत्तरदाता उक्त प्रावधानों को प्रभावी नहीं करेंगे। साथ ही प्राधिकरण ने यह भी निर्देश दिया कि विवादित जीओएम के संम्बंध में पारित आदेश भविष्यलक्षी प्रभाव रखेगा और इस कारण उक्त आदेश 7

नवंबर, 2001 तक उक्त नियमों के अनुपालन में की गई कोई भी कार्रवाई को प्रभावित नहीं करेगा और वी. जगन्नाध राव के मामले में इस न्यायालय के फैसले से पहले प्रचलित कानूनी स्थिति के आधार पर की गई पदौन्नती पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

6. प्राधिकरण के आदेश द्वारा पीड़ित कर्मचारीगण की याचिका क्यूंकि आंशिक रूप से ही स्वीकार की गई थी इसलिए उन्होंने रिट याचिका संख्या 6163 और 6068 2004 दायर की, जिसके तहत उन्होंने प्राधिकरण के फैसले को उस हद तक चुनौती दी, जिसके तहत आदेश से पहले आक्षेपित जीओएम के तहत की गई पदोन्नति अप्रभावित रही। साथ ही प्राधिकरण के इसी आदेश से व्यथित कुछ कर्मचारियों द्वारा फैसले के खिलाफ रिट याचिका संख्या 16890/2006 दायर की गई थी, जो प्राधिकरण द्वारा दिए गए इस मत से व्यथित महसूस कर रहे थे कि आक्षेपित जीओएम राष्ट्रपति आदेश का उल्लंघनकारी होने के कारण असंवैधानिक हैं। प्रस्तुत याचीकाओं पर आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने रिट याचिका संख्या 6123 और 6068/2004 को स्वीकार किया तथा इस न्यायालय के अन्य निर्णयों के आधार पर रिट याचिका संख्या 16890/2006 को खारिज कर दिया है। उक्त निर्णय और आदेश को हमारे समक्ष चुनौती दी गई है। उच्च न्यायालय ने यह माना है की कोई आदेश भविष्यलक्षी प्रभाव रखने बाबत सिद्धांत को केवल शीर्ष न्यायालय द्वारा ही लागू किया जा सकता है, उच्च

न्यायालयों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग कर ऐसा नहीं किया जा सकता है। परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से यह निष्कर्ष निकला है की न केवल विवादित जीओएम को असंवैधानिक माना गया है, बल्कि उसके अनुसार की गई कोई भी कार्रवाई भी असंवैधानिक घोषित किया गया है।

7. वर्तमान अपीलों में अपीलकर्ता वे कर्मचारी हैं जो उच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिका में पक्षकार नहीं थे। उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश से व्यथित महसूस करते हुए उन्होंने समीक्षा याचिका डब्लूपीएमपी संख्या 3576/2010 यह तर्क देते हुए दायर की, कि समीक्षाधीन निर्णय अपीलकर्ताओं जैसे कर्मचारियों को मामले में पक्षकार के रूप में शामिल किए बिना पारित किया गया था, जबकि पारित निर्णय तथा आदेश उन पर प्रभावी और बाध्यकारी था और इस कारण उच्च न्यायालय द्वारा किए गए किसी भी बदलाव का उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इन अपीलों में हमारे समक्ष अपीलकर्ता जो की समीक्षा याचिकाकर्ता थे ने समीक्षा याचिका में यह तर्क दिया गया कि वे न केवल राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष दायर ओ.ए. में आवश्यक पक्षकार थे, बल्कि उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई रिट याचिकाओं के लिए भी वे आवश्यक पक्षकार थे और इस कारण आवश्यक पक्षकारो की अनुपस्थिति में नियमों को चुनौती देने वाली याचिकाएँ में की गई कार्यवाही ख़ारिज होने

योग्य थीं। हालाँकि, उक्त तर्क को उच्च न्यायालय ने इस आधार पर खारिज कर दिया कि प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश से पीड़ित व्यक्ति द्वारा एक अलग और स्वतंत्र रिट याचिका में चुनौती दी जानी चाहिए थी। तदनुसार, समीक्षा याचिकाएँ खारिज कर दी गईं और साथ ही इस न्यायालय में अपील करने की अनुमति देने की प्रार्थना भी खारिज कर दी गई। उपरोक्त पृष्ठभूमि में अपीलकर्ताओं द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा पारित दो निर्णयों और आदेशों को चुनौती देते हुए वर्तमान अपीलें दायर की गई हैं।

8. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओ को विस्तार से सुना है। संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत की उत्पत्ति अमेरिकी न्यायशास्त्र में हुई थी। इसका प्रयोग इस देश में सबसे पहले सी. गोलक नाथ एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य के मामले में एआईआर 1967 एससी 1643 किया गया था और न्यायालय इस तथ्य के प्रति सचेत था कि सिद्धांत की उत्पत्ति किसी अन्य देश में हुई थी और इसे विभिन्न परिस्थितियों में लागू किया गया था। न्यायालय ने भारतीय परिस्थितियों में सिद्धांत के अनुप्रयोग में सावधानी बरतने का हवाला देते हुए गोलक नाथ के मामले (सुप्रा) में निम्नलिखित अंश से सिद्धांत के उपयोग बाबत मापदंडों को निर्धारित किया और बताया है की इसे कैसे प्रयोग किया जा सकता है। इस न्यायालय ने कहा:

"चूंकि इस न्यायालय द्वारा पहली बार एक अलग देश में विकसित सिद्धांत को जो की विभिन्न परिस्थितियों में विकसित हुआ उसे लागू किया जा रहा है, इसलिए हम शुरुआत में सावधानी से आगे बढ़ना चाहेंगे। हम निम्नलिखित प्रस्ताव रखेंगे:

(1) संभावित अधिनिर्णय का सिद्धांत केवल हमारे संविधान के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में ही लागू किया जा सकता है;

(2) इसे केवल देश की सर्वोच्च अदालत, यानी सुप्रीम कोर्ट द्वारा ही लागू किया जा सकता है क्योंकि इसके पास भारत की सभी अदालतों पर कानून को बाध्यकारी घोषित करने का संवैधानिक अधिकार क्षेत्र है;

(3) सुप्रीम कोर्ट द्वारा अपने पहले के फैसलों को रद्द करते हुए घोषित कानून के पूर्वव्यापी संचालन का दायरा उसके विवेक पर छोड़ दिया गया है ताकि उसे उसके समक्ष कारण या मामले के न्याय के अनुसार ढाला जा सके।"

9. यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि यह सिद्धांत उसी मुद्दे पर पहले के न्यायिक निर्णय को रद्द करने तक ही सीमित नहीं रहा है जैसा कि गोलक नाथ के मामले (सुप्रा) में समझा गया था। बाद के कई निर्णयों में,

इस न्यायालय ने विभिन्न स्थितियों में इस सिद्धांत को लागू किया है, जिसमें वे मामले भी शामिल हैं जहां किसी मुद्दे की पहली बार जांच और निर्धारण किया गया है। उदाहरण के लिए इंडिया सीमेंट लिमिटेड और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (1990) 1 एससीसी 12 मामले में, इस न्यायालय ने न केवल यह माना कि मद्रास ग्राम पंचायत संशोधन अधिनियम, 1964 के जरिये संशोधन कर उपकर लगाना राज्य विधानमंडल की शक्ति के अधिकार के बाहर है, बल्कि यह भी निर्देश दिया कि भुगतान की गई उपकर राशि या पहले ही एकत्र किए गए उपकार का रिफंड हेतु राज्य उत्तरदायी नहीं होगा। उड़ीसा सीमेंट लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य 1991 सप्ल. (1) एससीसी 430 में, इस न्यायालय ने एक प्रावधान की अमान्यता के संबंध में घोषणा और उसके परिणामस्वरूप दी जाने वाले अनुतोष के निर्धारण के बीच अंतर किया। इस न्यायालय ने माना कि न्याय के हित को ध्यान में रखते हुए उसके समक्ष स्थिति के लिए सबसे उपयुक्त तरीके से राहत देने, ढालने या प्रतिबंधित करने का अधिकार न्यायालय के पास है।

10. भारत संघ एवं अन्य बनाम मो. रमज़ान खान (1991) 1 एससीसी 588 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी यही सन्दर्भ दिया जाना उचित होगा क्यूंकि उक्त निर्णय में जहां जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रस्तुत न करने को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन माना

गया और ऐसी किसी भी रिपोर्ट के आधार पर किसी भी अनुशासनात्मक कार्रवाई को रद्द करने के लिए उत्तरदायी माना गया। हालाँकि, रिपोर्ट की एक प्रति की आपूर्ति न करने के प्रभाव के बारे में कानून की घोषणा को संभावित बना दिया गया था ताकि किसी दोषी कर्मचारी पर पहले से लगाई गई कोई भी सजा उस कारण से चुनौती के लिए खुली न रहे।

11. अशोक कुमार गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (1997) 5 एससीसी 201 के मामले में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि हालांकि संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत मौलिक अधिकारों की संशोधनहीनता के संबंध में गोलक नाथ के मामले को केशवानंद भारती श्रीपदगलवरु और अन्य बनाम केरल राज्य (1973) 4 एससीसी 225 के मामले में खारिज कर दिया गया था फिर भी संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत को बरकरार रखा गया और बाद के कई निर्णयों में इसका पालन किया गया। इस न्यायालय ने आगे कहा कि संविधान स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत के विरुद्ध प्रावधान नहीं करता है। वास्तव में, अनुच्छेद 32(4) और 142 में व्यापक शब्दों का उपयोग किया गया है ताकि सर्वोच्च न्यायालय को कानून घोषित करने और ऐसे निर्देश देने या ऐसे आदेश पारित करने में सक्षम बनाया जा सके जो पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हैं। इस न्यायालय ने कहा:

"54.....तो, इस बात का कोई स्वीकार्य कारण नहीं है कि न्यायालय अपने द्वारा पहले घोषित कानून को बदलकर घोषित नए क़ानून को भविष्य की परिस्थिति तक ही सीमित क्यों न कर सके और पूर्व घोषित कानून के तहत किए गए वैधानिक रूप से या अन्य तरह से किये गए कार्यो को नए घोषित कानून से अलग रख सके । इसलिए, यह न्यायालय संभावित अधिनिर्णय के आधार पर रंगाचारी के मामले में दिए गए निष्कर्ष से हटकर पक्षकारो के प्रतिस्पर्धी अधिकारों को समायोजित करने में असमर्थ नहीं है। मंडल मामले में निर्णय के क्रियान्वयन को निर्णय की तारीख से पांच साल के लिए को स्थगित करना गोलक नाथ मामले में विकसित संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत का एक उदाहरण और विस्तार है।

12. अनुच्छेद 142 के तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति की प्रकृति की व्याख्या करते हुए इस न्यायालय ने माना कि अभिव्यक्ति 'पूर्ण न्याय' मानवीय परिस्थितियों द्वारा या संविधान के अनुच्छेद 32, 136 या 141 के तहत घोषित क़ानून या कानून के संचालन में उत्पन्न हुई असंख्य स्थितियों को पूरा करने के लिए है। इस न्यायालय ने माना की:

"60... अनुच्छेद 142 के तहत प्राप्त शक्ति वैधानिक निषेध से परे एक संवैधानिक शक्ति है। अनुच्छेद 142(2) के तहत शक्ति का प्रयोग करने से पहले, न्यायालय अनुच्छेद 142(2) के तहत कदम उठाने से पहले उस प्रावधान पर विचार करेगा और इस कारण न्याय दिलाना या अन्याय दूर करने में राहत देने के लिए या उचित निर्णय लेने के लिए हमें शक्ति के प्रयोग को सीमित करने बाबत शब्द प्रावधान में नहीं मिलते हैं। । अनुच्छेद 142(1) में दिया गया वाक्यांश "पूर्ण न्याय" मानवीय सरलता या क़ानून के संचालन के कारण या परिणाम या अनुच्छेद 32, 136 और 141 के तहत घोषित कानून द्वारा बनाई गई असंख्य स्थितियों को पूरा करने के लिए है और इस वाक्यांश को संविधान की किसी सीमा या पदावली में बांधा या बंद नहीं किया जा सकता। इसलिए प्रत्येक मामले की पृष्ठभूमि और निर्णय के अमिट प्रभाव के प्रकाश में परिस्थितयों के परीक्षण की आवश्यकता है। अंतिम विश्लेषण में, इस न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह पूर्ण न्याय करने या उसके समक्ष मामले या मामले की अत्यावश्यकताओं से उत्पन्न होने वाले अन्याय को रोकने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करे।

इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार की कमी या आदेश की शून्यता का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसा कि पहले माना गया था, अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में एक संवैधानिक शक्ति है। इसलिए, किसी कानून के शुरू से ही शून्य होने या शून्य घोषित किए जाने योग्य होने का सवाल ही नहीं उठता।"

13. मेसर्स सोमैया ऑर्गेनिक्स (इंडिया) लिमिटेड आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2001 (5) एससीसी 519 मामले में इस न्यायालय ने माना कि संभावित अधिनिर्णय का सिद्धांत मूलतः इस सिद्धांत को मान्यता देता है कि न्यायालय मामले के पूर्ण न्याय करने के लिए चाही गई राहत को उचित रुपे से प्रदान करता है और इस देश में सर्वोच्च न्यायालय को स्पष्ट रूप से वह शक्ति प्राप्त है जिसके चलते संविधान का अनुच्छेद 142 न्यायालय को ऐसी डिक्री पारित करने या ऐसा आदेश देने की अनुमति देता है जो इस न्यायालय के समक्ष लंबित किसी भी मामले या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो। इस न्यायालय ने कहा:

"अंतिम विश्लेषण में, संभावित अधिनिर्णय, ऐसी शब्दावली के बावजूद, केवल उस सिद्धांत की मान्यता है कि अदालत मामले में पूरा न्याय करने के लिए चाहे गए

अनुतोष को उचित रुपे से प्रदान करता है – और ऐसा न्याय तार्किक अर्थ में ही नहीं बल्कि अपने न्यायसंगत अर्थ में भी। भारत देश में संविधान के अनुच्छेद 142 द्वारा स्पष्ट रूप से शक्ति प्रदान की गई है जो इस न्यायालय को "ऐसी डिक्री पारित करने या ऐसा आदेश देने की अनुमति देती है जो उसके समक्ष लंबित किसी भी कारण या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक है"। इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, इस न्यायालय ने अक्सर "पूर्ण न्याय" करने के लिए दावेदारों के पक्ष में निर्णय लेने के बावजूद चाहे गए अनुतोष को अस्वीकार कर दिया है।''

14. इस न्यायालय द्वारा 'संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत' को व्यावहारिकता और न्यायिक कौशल के रूप में देखा गया, जो पूर्व घोषित कानून के बदलने पर नए कानून की घोषणा पर लोगों के अधिकारों को अनावश्यक रूप से प्रभावित किए बिना कानून के संचालन में सुचारू परिवर्तन लाने के लिए एक उपयोगी उपकरण है ।

15. कैलाश चंद शर्मा बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2002) 6 एससीसी 562 के मामले में उम्मीदवारों के निवास स्थान के आधार पर वेटेज प्रदान करने वाले नियमों की संवैधानिक वैधता पर राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने अपने पहले के

फैसले को पलटते हुए इस तरह के वेटेज देने को बरकरार रखते हुए नियम को असंवैधानिक घोषित कर दिया। इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपील में विचाराधीन प्रश्नों में से एक प्रश्न यह था कि क्या विवादित नियम के आधार पर किए गए चयन को संभावित ओवररूलिंग के सिद्धांत को लागू करके पृथक किया जा सकता है। प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए, इस न्यायालय ने सिद्धांत को लागू करने के लिए दो अलग-अलग कारणों का हवाला दिया। सबसे पहले, यह बताया गया कि इस विषय पर कानून परिवर्तन की स्थिति में था क्योंकि उच्च न्यायालय के पिछले फैसलों ने इस तरह के वेटेज को मंजूरी दे दी थी। इस न्यायालय ने पाया कि जिस तारीख को चयन प्रक्रिया शुरू हुई और जब तक यह पूरी हुई, तब तक उच्च न्यायालय के पहले के फैसलों में घोषित कानून प्रभावी रहा। पहले के निर्णयों को खारिज करने वाले बाद के फैसले के कारण पूर्व कानूनी स्थिति के बदले जाने पर चयन प्रक्रिया और उसके आधार पर की गई नियुक्तियों को पृथक करने के लिए 'संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत' का अनुपालन पर्याप्त कारण माना गया था और प्रबंधन निदेशक, ईसीआईएल हैदराबाद बनाम बी. करुणाकर (1993) 4 एससीसी 727 मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले को भी आधार बनाया गया था । दूसरे यह की, इस न्यायालय ने माना कि जिन उम्मीदवारों को चयन प्रक्रिया के आधार पर नियुक्त किया गया था, उन्हें उन रिट याचिकाओं में पक्षकार के रूप में

शामिल नहीं किया गया था, जिन्होंने उम्मीदवारों के निवास स्थान के आधार पर अंक प्रदान करने वाले नियमों को चुनौती दी थी। ऐसा होने पर एक नए रास्ते पर चलने वाला निर्णय पहले से नियुक्त उम्मीदवारों के लिए हानिकारक नहीं होना चाहिए। इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा की गई निम्नलिखित टिप्पणियाँ उचित हैं:

> "जब तक चयन प्रक्रिया शुरू और पूरी हुई, तब तक ये निर्णय प्रभावी थे। हालाँकि, जब कैलाश चंद और अन्य द्वारा दायर रिट याचिकाएँ एक विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए आईं, तो उन दो निर्णयों में लिए गए दृष्टिकोण की सत्यता को प्रश्नगत किया गया और उन्होंने मामलों को विद्वान मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखने का निर्देश दिया। 19-7-1999 को जब यह आदेश पारित हुआ, तब तक हमें सूचित किया गया कि कई जिलों में अभ्यर्थियों की चयन सूची प्रकाशित हो चुकी थी। तीन महीने की अवधि के लिए दिए गए स्थगन और अन्य वैध कारणों के कारण, आगे की सूचियाँ प्रकाशित नहीं की गईं। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऐसे मामले में जहां विषय पर कानून परिवर्तन की स्थिति में था, इस न्यायालय द्वारा संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत को लागू किया गया था।

प्रबंधन निदेशक, ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर में पारित निर्णय इस दृष्टिकोण का एक उदाहरण है। वर्तमान मामले में, पूर्व न्यायिक सिद्धांत के मद्देनजर, नियुक्ति अधिकारियों या उम्मीदवारों द्वारा बोनस अंकों के साथ चयन प्रक्रिया की वैधता को गंभीरता से प्रश्नगत नहीं किया जा सकता था। पूर्व पारित निर्णयों को चयन प्रक्रिया पूरी होने और परिणाम घोषित होने से पूर्व या घोषित होने के बाद प्रश्नगत किया गया था । इसलिए, चयन के बाद दिए गए पूर्ण पीठ के फैसले को संभावित रूप से लागू करने का यह एक उपयुक्त मामला है। एक और पहलू जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए वह यह है कि चयनित उम्मीदवारों को और नियुक्त उम्मीदवारों को सभी रिट याचिकाओं में, उच्च न्यायालय के समक्ष पक्षकार नहीं बनाया गया था। हो सकता है, प्रभावित होने वाले प्रत्येक पक्ष को नोटिस भेजने की श्रमसाध्य और लंबे समय तक चलने वाली प्रक्रिया न की गई हो परन्तु कम से कम, समाचार पत्र प्रकाशन द्वारा एक सामान्य सूचना मांगी जा सकती थी या वैकल्पिक रूप से, कम से कम चयनित/नियुक्त अंतिम उम्मीदवारों में से कुछ को नोटिस दिया जा सकता था; लेकिन, लगभग सभी मामलों

में ऐसा नहीं किया गया। यही कारण है कि नए रास्ते पर चलने वाले फैसले से जहां तक संभव हो पहले से नियुक्त उम्मीदवारों को नुकसान नहीं होना चाहिए।"

16. अधिवक्ता बार में यह बहस हुई कि क्या उच्च न्यायालय संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत को लागू कर सकता था, भले ही राज्य प्रशासनिक प्राधिकरण ऐसा करने में अक्षम था। उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित वकील द्वारा यह तर्क दिया गया कि इस न्यायालय के प्रतिपादित सिद्धांतो से यह उभरता है की केवल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत का उपयोग किया जा सकता है। विद्वान वकील के अनुसार, प्रकरण के तथ्यों परिस्थितयों में न तो ट्रिब्यूनल द्वारा और न ही उच्च न्यायालय द्वारा सिद्धांत को लागू करने का कोई औचित्य था।

17. दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री जयंत भूषण ने तर्क दिया और, हमारी राय में, यह सही है कि इस न्यायालय के लिए इस प्रश्न पर विचार करना अनावश्यक था कि क्या संभावित अधिनिर्णय का सिद्धांत उच्च न्यायालय को उपलब्ध है। उन्होंने आग्रह किया कि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भले ही उच्च न्यायालय सिद्धांत को लागू करने के लिए सक्षम नहीं है, फिर भी इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए की इस न्यायालय को ऐसा करने से कोई नहीं रोक सकता है क्यूंकि लागू नियमों के तहत पदोन्नत किए गए लोगों ने अपने

संबंधित पदों पर कार्य किया है और उन्हें अपने मूल क्षेत्र/कैडर में वापसी न केवल प्रशासनिक रूप से कठिन है, बल्कि अनुचित रूप से कठोर और अनुचित भी है । श्री जयंत भूषण द्वारा यह तर्क दिया गया की वर्तमान मामले में लगाए गए नियमों की वैधता के बारे में कानून तब तक परिवर्तन की स्थिति में था जब तक कि जगन्नाध राव के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले ने अंततः यह घोषित नहीं कर दिया कि जैसे प्रावधान किए गए हैं वे राष्ट्रपति आदेश के उल्लंघनकारी होने के चलते संवैधानिक रूप से अस्वीकार्य है। वैसे भी 7 नवंबर, 2001 जो की वह तारीख है जब जगन्नाध राव के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय का फैसला सुनाया गया था उस के बाद कोई पदोन्नति नहीं की गई। इसलिए पहले से की गई ऐसी पदोन्नतियों को समानता को संतुलित करने और न्याय के दुरुपयोग को रोकने के लिए पृथक किया जा सकता है, जिन्हें संबंधित अवधि के दौरान वैध माने गए नियम के आधार पर अपने क्षेत्र/कैडर के बाहर के पदों पर पदोन्नत किया गया था।

18. जगन्नाध राव के मामले (सुप्रा) में, याचिकाएँ वर्ष 1987 में दायर की गई थीं। राज्य प्रशासनिक प्राधिकरण ने 17 अप्रैल, 1995 के अपने आदेश द्वारा पदोन्नति द्वारा अंतर-विभागीय स्थानांतरण प्रदान करने वाले नियम को अविधिक घोषित कर दिया था। कानूनी स्थिति अंततः 7 नवंबर, 2001 को इस न्यायालय के फैसले से स्थापित हो गई। वर्तमान

मामले में याचिकाएं वर्ष 1997 में राज्य प्रशासनिक प्राधिकरण के समक्ष दायर की गईं थीं। प्राधिकरण ने उपरोक्त फैसले के आधार पर इसे रद्द कर दिया था। प्राधिकरण द्वारा दिनांक 27 मार्च, 2003 के आदेश से पूर्व-कैडर/ज़ोन पदोन्नति के लिए बनाए गए नियम को रद्द किया गया, लेकिन पहले से की गई पदोन्नति को पृथक रखा गया। ट्रिब्यूनल के पहले की गई पदोन्नति को पृथक करने के आदेश को चुनौती देने वाली याचिका पर आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय द्वारा फैसले दिनांक 9 मार्च, 2007 को सुनाया गया था। नियमों को रद्द करने से प्रभावित लोगों द्वारा दायर समीक्षा याचिका 3 नवंबर, 2010 को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। जगन्नाध राव के मामले (सुप्रा) में आदेश की घोषणा से पहले यानी 7 नवंबर, 2001 से पहले की गई पदोन्नति, समीक्षा याचिका खारिज कर दिए जाने से पूर्व लगभग दस वर्षों तक जारी रही है और मामला इस न्यायालय के समक्ष लाया गया। उस पृष्ठभूमि में हमने प्रतिवादी-राज्य के विद्वान वकील से यह निर्देश लेने के लिए कहा था कि क्या राज्य सरकार याचिकाकर्ताओं को समायोजित करने और उनके प्रत्यावर्तन को रोकने के लिए अतिरिक्त पद सृजित करने के लिए तैयार है। हालाँकि, आंध्र प्रदेश सरकार के श्रम आयुक्त द्वारा दायर एक अतिरिक्त हलफनामा इस बात का समर्थन नहीं करता है कि आक्षेपित निर्णय से उत्पन्न गतिरोध का समाधान क्या हो सकता है। हलफनामे में कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं

को उनके मूल पदों यानी वरिष्ठ सहायकों और वरिष्ठ आशुलिपिकों को समायोजित करने के लिए अतिरिक्त पद बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह उन याचिकाकर्ताओं के लिए निदेशालय में अतिरिक्त पदों के सृजन से भी इनकार करता है जो सहायक श्रम अधिकारी, सहायक श्रम आयुक्त और श्रम उपायुक्त के रूप में काम कर रहे थे। हलफनामे में कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने वरिष्ठ सहायक और वरिष्ठ आशुलिपिक के रूप में काम करते हुए कार्यकारी पदों पर नियमित लाइन के बाहर सहायक श्रम अधिकारी के रूप में जाने का विकल्प चुना था, जहां पदधारी श्रम कानूनों को लागू करते हैं। हलफनामे से पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं ने दूसरे क्षेत्र में सहायक श्रम अधिकारी के रूप में उच्च पद स्वीकार करके अपने कैडर से बाहर जाने में एक परिकलित जोखिम उठाया था। यह कहना पर्याप्त है कि प्रतिवादी-राज्य ने अतिरिक्त पद सृजित करने की अपनी इच्छा व्यक्त नहीं की है। इसलिए, हमारे पास उन तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें प्रश्न उठता है, मामले के गुण-दोष के आधार पर संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत को लागू करने के प्रश्न की जांच करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। ऐसा करते समय हमें सबसे पहले यह बताना होगा कि उत्तरदाताओं का यह कहना सही नहीं है कि याचिकाकर्ताओं ने अपने कैडर के बाहर पदोन्नति का विकल्प चुनकर कोई जानबूझकर या गणना की गई जोखिम ली है। उत्तरदाताओं ने यह दावा करते समय इस

तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि पदोन्नति का आदेश राज्य द्वारा दिया गया था और याचिकाकर्ताओं द्वारा नहीं छीना गया था। जिस तारीख को पदोन्नति की गई थी उसके अलावा जोखिम का कोई तत्व नहीं था और न ही पदोन्नति ऐसी पदोन्नति के लिए पदधारियों की पात्रता के संबंध में किसी कानूनी विवाद के निर्धारण के अधीन थी। इतना ही नहीं, जिन पदाधिकारियों को सहायक श्रम अधिकारी के रूप में पदोन्नति पर भेजा गया था, उन्हें बाद में सहायक श्रम आयुक्त या उप श्रम आयुक्त के रूप में पदोन्नत किया गया था। इस सुदूर समय में इन अधिकारियों को उनके मूल संवर्ग में वरिष्ठ आशुलिपिकों के पदों पर वापस भेजने की स्थिति हमें या तो न्यायसंगत, निष्पक्ष या न्यायसंगत प्रतीत नहीं होती है, खासकर तब जब राज्य उन्हें पदावनत करने का प्रस्ताव नहीं करता है। उनके ज़ोन/कैडर के भीतर उच्च पद क्योंकि ऐसे उच्च पदों पर अन्य अधिकारियों का कब्जा है, जिनमें से अधिकांश यदि नहीं तो सभी याचिकाकर्ताओं से कनिष्ठ हैं और जिन्हें उन उच्च पदों पर याचिकाकर्ताओं के लिए जगह बनाने के लिए वापस भेजा जा सकता है। इसलिए याचिकाकर्ताओं को उनके मूल कैडर में वापस भेजने का व्यापक प्रभाव पड़ना तय है, जिससे उन लोगों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जो हमारे सामने पक्षकार नहीं हैं। यह तथ्य कि याचिकाकर्ताओं को ट्रिब्यूनल या उच्च न्यायालय के समक्ष पक्षकार के रूप में सूचीबद्ध नहीं किया गया था,

वर्तमान मामले की तथ्य स्थिति को कैलाश चंद के मामले (सुप्रा) के करीब लाता है। वर्तमान मामले में कानून, कैलाश चंद के मामले (सुप्रा) की तरह, अस्थिर स्थिति में था। ऐसी स्थिति होने पर, हमें कोई कारण नहीं दिखता कि तत्काल मामले में संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है। सिर्फ इसलिए कि, इस न्यायालय ने जगन्नाध राव के मामले (सुप्रा) में उस प्रश्न को संबोधित नहीं किया था, हमारे लिए वर्तमान मामले में ऐसा करने से इनकार करने का कोई कारण नहीं है। इसके अलावा, जगन्नाध राव का मामला (सुप्रा) मानदंडों के एक अलग सेट से निपट रहा था जिसमें पहले उल्लिखित जीओएम नंबर 14 और 22 शामिल थे। हालांकि मूल प्रश्न यह है कि क्या ऐसे जीओएम एक विभाग से कैडर या ज़ोन से दूसरे विभाग में स्थानांतरण द्वारा पदोन्नति की अनुमति देते हैं, यह वही हो सकता है, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि जिन नियमों के साथ यह न्यायालय जगन्नाध राव के मामले (सुप्रा) में चिंतित था, वे नियमों से भिन्न थे जिनके साथ हम वर्तमान मामले में निपट रहे हैं। हमें लगता है कि संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत के आवेदन के सवाल पर, जगन्नाध राव के मामले (सुप्रा) में निर्णय इस न्यायालय के लिए बाधा नहीं बनेगा।

19. परिणामस्वरूप, हम इन अपीलों को स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को रद्द करते हैं और मानते हैं कि जीओएम

नंबर 14 और 22 को राज्य प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा राष्ट्रपति आदेश के दायरे से बाहर सही रूप से घोषित किया गया है, परन्तु यह घोषणा 7 नवंबर, 2001, वह तारीख जब इस न्यायालय द्वारा जगन्नाध राव का फैसला किया गया था, से पहले उक्त जीओएम के आधार पर की गई पदोन्नति और नियुक्तियों को प्रभावित नहीं करेगी, । पार्टियों को अपना खर्च स्वयं वहन करेंगी।

अवमानना याचिकाएं (सी) संख्या 445-449, 2013

हमारे द्वारा पारित उपरोक्त आदेश के आलोक में, हमें इन कार्यवाही को जारी रखने का कोई कारण नहीं दिखता है, अतः इन्हें बंद कर दिया जाता है और अवमानना याचिकाएं खारिज की जाती है ।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी वैभव सोनी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।